© 2018 IJSRSET | Volume 4 | Issue 1 | Print ISSN: 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099
Themed Section : Engineering and Technology

पातञ्जलयोग : एक समीक्षा

रामानन्द (शोधच्छात्र)
संस्कृत तथा प्राकृत भाषा–विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
Email-ramanandlu@gmail.com

भारतीय विचारधारा में योग–साधना का अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। उल्लेखनीय है कि भारतीय विचारधारा में चार्वाक दर्शन के अतिरिक्त सभी दार्शनिक सम्प्रदाय आत्मसाक्षात्कार या ईश्वरलाभ या मोक्ष की प्राप्ति के लिए योग–साधना की आवश्यकता को निर्विवाद रूप से स्वीकार करते हैं। यद्यपि भारतीय परम्परा में योग–साधना का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है, उपनिषद्, महाभारत, भगवद्गीता, जैन और बौद्ध मतों में योग सम्बन्धी क्रियाओं का विवेचन प्राप्त होता है तथापि सर्वप्रथम महर्षि पतञ्जलि ने ही सुसम्बद्ध दार्शनिक सिद्धान्त के रूप में योग का विवेचन किया। इसीलिए इसे 'पातञ्जलयोग' भी कहा जाता है। उन्होंने उस अस्पष्ट परम्परा को, जो जीवन तथा अनुभव के दबाव से विकसित हुई, एक विधान का रूप दिया। इसमें तपस्या तथा गहन चिन्तन विषयक उन विचारों का निचोड़ पाया जाता है जो उस समय अस्पष्ट और अनिश्चित रूप से विद्यमान थे।

भारतीय विचारधारा में 'योग' शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों में हुआ है। सामान्यतया योग शब्द √युज् धातु में घञ् प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है। पाणिनीय व्याकरण में √युज् धातु समाधि, योग एवं संयमन इन तीन अर्थों में व्यवहृत होती है। पातञ्जलयोग में योग शब्द √युज्–समाधौ धातु से घञ् प्रत्यय लगाकर निष्पन्न माना जाता है। यह योग शब्द √युजिर्–योगे धातु से √युज्–संयमने धातु द्वारा निष्पन्न नहीं स्वीकार किया जा सकता। क्योंकि पातञ्जलयोग संयोग रूप न होकर वियोग फलक ही है क्योंकि वह दुःख की निवृत्ति कराने वाला है। इस व्युत्पत्ति की दृष्टि से योग शब्द का तात्पर्य समाधि या चित्तवृत्ति निरोध हुआ। यहाँ ध्यातव्य है कि चित्तवृत्ति निरोध के फलस्वरूप योग के सिद्ध होने पर द्रष्टा की अपने वास्तविक चिन्मात्र में स्थित या प्रतिष्ठा हो जाती है और उसके मोक्ष की सिद्धि हो जाती है। कभी–कभी इसका प्रयोग संयोजित करने के अर्थ में, परमात्मा से जीवात्मा के मिलन के अर्थ में होता है। श्रीमद्भगवद्गीता में योग को कर्म में कुशलता प्राप्त करना (**योगः कर्मसु कौशलम्**)[1] समत्वभाव (**समत्वं योगरूच्यते**)[2], बह्मभाव आदि भी कहा जाता है, किन्तु पातञ्जलयोग दर्शन में योग का अर्थ 'जुड़ना' (एकत्व) नहीं है, बल्कि 'प्रयत्नमात्र' है। इसका अर्थ प्रयत्न है, कठोर परिश्रम है, इन्द्रियों तथा मन का निग्रह है। वस्तुतः पतञ्जलि का मुख्य उद्देश्य किसी आध्यात्मिक

सिद्धान्त का प्रतिपादन करना नहीं है, बल्कि यह सुनिश्चित करना है कि किस प्रकार चित्त की वृत्तियों के निरोध द्वारा कैवल्य प्राप्त किया जा सकता है।

महर्षि पतञ्जलि का योगसूत्र ही इस दर्शन का आधारभूत ग्रन्थ है। उन्होंने इसमें सर्वप्रथम योग का व्यवस्थित ढंग से दार्शनिक प्रतिपादन किया। योगसूत्र चार पादों (अध्यायों) में विभक्त है। ये चार पाद हैं–समाधिपाद, साधनपाद, विभूतिपाद और कैवल्यपाद। समाधिपाद में योग के स्वरूप, उद्देश्य, लक्षण और उसके साधन का विवेचन है। साधनपाद में कर्म, क्लेश, कर्मफल का विवेचन है। विभूतिपाद में योग के अङ्गों एवं योगाभ्यास से प्राप्त होने वाली सिद्धियों का विवेचन प्राप्त होता है। कैवल्यपाद में कैवल्य के स्वरूप का विवेचन है। पतञ्जलि के योगसूत्र पर व्यासकृत भाष्य सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। इसे **'व्यासभाष्य'** या योगभाष्य भी कहते हैं। व्यास के योगभाष्य पर वाचस्पति मिश्र का भाष्य **'तत्त्ववैशारदी'** इस दर्शन की जानकारी के लिए एक अन्य प्रामाणिक ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त विज्ञानभिक्षु के 'योगवार्तिक' और 'योगसारसंग्रह' योग दर्शन के अन्य उपयोगी ग्रन्थ हैं। भोजकृत 'राजमार्तण्ड' भी इसका एक अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त रामानन्द की 'मणिप्रभा', सदाशिवेन्द्र सरस्वती का **'योगसुधाकर'** तथा राघवानन्द सरस्वती का **'पातञ्जलरहस्य'** आदि टीकाएँ भी प्रसिद्ध हैं। ओमानन्दतीर्थ ने 'पातञ्जलयोग–प्रदीप' नामक एक सरल और सुबोध ग्रन्थ लिखकर पतञ्जलि के योग का सामान्य परिचय हिन्दी के पाठकों को दिया है।

पातञ्जलयोग योग का एक प्रमुख ग्रन्थ माना जाता है। शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोणों से विचार करने पर यह पता चलता है कि भिन्न–भिन्न साधकों की अभिरूचि एवं सामर्थ्य भिन्न–भिन्न होती है। इस आधार पर योग साधना भी अनेक प्रकार की है। अनेक प्रकार की इस साधनाओं को शास्त्रों में योग के नाम से अभिहित किया गया है। यथा–ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, तन्त्रयोग, जपयोग, लययोग, प्रेमयोग, महायोग, कुण्डलिनी–योग, हठयोग आदि। ज्ञानमार्ग के द्वारा सर्वोच्च अवस्था की प्राप्ति के मार्ग को ज्ञानयोग कहा जाता है। वैसे तो उन सभी साधनाओं को जिनमें ज्ञान को माध्यम बनाकर लक्ष्य की प्राप्ति की जाती है, उसे ज्ञानयोग कहते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में सांख्ययोग को भी ज्ञानयोग कहा गया है।[3] ज्ञानयोग के अनुसार जीवब्रह्म की एकता का ज्ञान हो जाना ही मोक्ष है अर्थात् आनन्दात्मक ब्रह्मप्राप्ति और शोकनिवृत्ति ही मोक्ष है।[4] स्वामी विवेकानन्द के अनुसार सच्चे और निष्कपटभाव से ईश्वर की खोज को भक्तियोग कहते हैं।[5] परमभक्त नारद के अनुसार भगवान् के प्रति उत्कट प्रेम ही भक्ति है।[6] मनुष्य के अन्दर कर्म करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है कि कोई भी मनुष्य किसी भी काल में क्षणमात्र भी कर्म किए बिना नहीं रह सकता, क्योंकि सारा मनुष्य समुदाय प्रकृति जनित गुणों द्वारा परवश हुआ कर्म करने के लिए बाध्य किया जाता है।[7] तन्त्रयोग एक ऐसी पद्धति है जिसमें आन्तरिक और बाह्य तथा व्यक्तिगत और सामूहिक क्रियाओं का समावेश है। शैव और शाक्त तन्त्रों के अतिरिक्त वैष्णव, सूर्य और गाणपत्य तीन तन्त्र और हैं। इन पाँचों को पंचागम कहा गया है। तन्त्र के अनुसार पुरुष (शिव) सर्वव्यापक, विशुद्ध, चैतन्य और अकाय तथा सर्वथा निर्लिप्त है। शिव बिना शक्ति के अधूरा है। शक्ति के द्वारा ही वह सृष्टि रचना

के योग्य होता है अन्यथा गति करने के भी अयोग्य है।[8] किसी मन्त्र के जप के द्वारा परमलक्ष्य की प्राप्ति करने को जपयोग कहते हैं। योगसूत्रों में भी महर्षि पतञ्जलि ने मन्त्र सिद्धिमानी है[9] तथा कहा है कि इष्ट मन्त्र के जप से इष्टदेव की प्राप्ति होती है।[10] योगदर्शन में प्रणव को ईश्वर का वाचक माना गया है[11] और उसके अर्थ की भावना करते हुए उसका जप करने से सिद्धि होती है ऐसा स्वीकार किया गया है।[12] लययोग चित्त का निरोध है। जिस किसी उपाय से चित्त का निरोध हो और तत्पश्चात् परमात्मा का ध्यान हो वह सब लययोग के अन्तर्गत आता है। लोकमर्यादा को छोड़कर इष्टदेव के प्रति हार्दिक पूर्ण समर्पण ही प्रेमयोग है। यह भावना प्रधान योग है। मीराबाई, चैतन्य महाप्रभु, सूरदास आदि इसी साधना से ही आगे बढ़े थे। महायोग के प्रवर्तक महर्षि रमण माने जाते हैं। इसमें निदिध्यासन ही मुख्य साधन है। इसमें अपने वास्तविक स्वरूप पर निदिध्यासन करना होता है। कुण्डलिनी–योग में कुण्डलिनी शक्ति ही लक्ष्य प्राप्ति कराने का मुख्य साधन है। इसमें कुण्डलिनी शक्ति को जागृत किया जाता है।

महर्षि पतञ्जलि के अनुसार योग चित्तवृत्तियों का निरोध है–**'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'**।[13] सामान्यतः चित्त शब्द से बुद्धि का बोध होता है जो प्रकृति का प्रथम विकार है। वाचस्पति मिश्र ने चित्त शब्द का अर्थ अन्तःकरण किया है। अन्तःकरण के अन्तर्गत मन, बुद्धि और अहंकार ये तीनों समाविष्ट हैं। यद्यपि चित्त को त्रिगुणात्मक माना गया है फिर भी उसमें सत्त्व गुण की प्रधानता है। सत्त्व गुण की प्रधानता होने के कारण चित्त स्वच्छ दर्पण के समान पुरुष के प्रतिबिम्ब को ग्रहण करता है जिससे उसमें चैतन्य का आभास होता है। चित्तवृत्ति का तात्पर्य है चित्त का विषयाकार होना जब चित्त इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष द्वारा विषयों के सम्पर्क में आता है तब वह विषयाकार हो जाता है। योगशास्त्र के भाष्यकार महर्षि व्यास ने चित्त की पांच अवस्थाओं का वर्णन किया है जिन्हें चित्तभूमि कहते हैं। इन पांच भूमियों में वर्तमान साधारण धर्म ही चित्त की स्वाभाविक अवस्था है। जिस समय जीव की चित्तवृत्तियाँ पूर्ण रूप से निरूद्ध हो जाती हैं। उस समय उसका चित्त अपने स्वाभाविक अवस्था अथवा योग की अवस्था में स्थित हो जाता है। क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरूद्ध ये चित्त की पाँच भूमियाँ है। चित्त की इन पाँच भूमियों में से प्रथम तीन में यद्यपि कभी–कभी वृत्ति का निरोध दृष्टिगोचर होता है किन्तु वे योग साधन के लिये उपयुक्त नहीं माना गया है। एकाग्र एवं निरूद्ध ये दो भूमियाँ ही वास्तव में योग की सम्प्राप्ति के लिये उपयुक्त है। एकाग्र भूमि की प्राप्ति होने पर साधक परमार्थ विषय की ओर प्रवृत्त होता है तथा उसके अविद्या, काम, कर्मादि क्लेश बन्धनों का टूटना आरम्भ हो जाता है निरूद्ध अवस्था की प्राप्ति होने पर साधक समाधि में स्थिर होकर पूर्ण निरोध को प्राप्त करता है। जो कैवल्य की निकटतम सीढ़ी है।

पातञ्जलयोग दर्शन में प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति ये पांच चित्त की वृत्तियाँ स्वीकार की गई है–**'प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः'**।[14] जिस साधनों से प्रमा की उपलब्धि होती है उन्हें प्रमाण कहते हैं। अनदिगत तत्त्व के बोध को प्रमा कहते हैं। भाष्यकार व्यास के अनुसार धर्मशास्त्रों द्वारा, अनुमान द्वारा तथा गहन चिन्तन के अभ्यास की उत्कट इच्छा द्वारा साधक अपनी अन्तर्दृष्टि को आगे बढ़ाता है तथा उच्चतम योग

को प्राप्त करता है।[15] विपर्यय, विषयों के सम्बन्ध में मिथ्या ज्ञान है जैसे रज्जु–सर्प ज्ञान, विपर्यय प्रमाण वृत्ति के द्वारा बाधित होता है। विकल्प शब्द ज्ञान से उत्पन्न होने वाली वृत्ति है। इससे ऐसे विषय का ज्ञान होता है जिसका इस संसार में अभाव होता है। जैसे–बन्ध्या–पुत्र। व्यास भाष्य में **'चैतन्यं पुरूषस्य स्वरूप'** यह उदाहरण दिया गया है। यहाँ चैतन्य और पुरुष में अभेद होने पर भी चैतन्य को पुरुष से भिन्न समझना विकल्प है। सुषुप्तावस्था की वृत्तियों को निद्रा कहते हैं। स्मृति संस्कार जन्य ज्ञान हैं।

अब प्रश्न होता है कि किस कारण मनुष्य का चित्त अशुद्ध होकर संसार के विषय के प्रति प्रेरित होता है। योगदर्शन के अनुसार जब विषयाकार चित्त का पुरुष का प्रकाश पड़ता है तब वह उससे अपना तादात्म्य स्थापित कर लेता है और जन्म मरण के चक्र से गुजरते हुए अनेक अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष एवं अभिनवेश ये पांच क्लेश माने गये हैं। अविद्या से राग आदि की उत्पत्ति होती है और रागादि से अविद्या की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार ये पारस्परिक सहयोग से जीव के कर्म विपाक को उत्पन्न करते हैं

पातञ्जलयोग दर्शन में चित्त की परिशुद्धि के लिये आठ साधनों यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि का जो विवेचन किया गया है उन्हें अष्टाङ्गयोग कहा जाता है। चित्तवृत्तियों के निरोध के लिए साधना पद्धति में आठ सोपान हैं। इसमें यम, नियम, आसान, प्राणायाम और प्रत्याहार से पांच बहिरङ्ग साधन हैं और धारणा, ध्यान और समाधि अन्तरङ्ग साधन है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह से पांच यम हैं–**'अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः'** ।[16] शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान नियम हैं–**'शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः** ।[17] यम और नियम को योग दर्शन का दस महादेश कहा जा सकता है। इनकी प्रवृत्ति सामान्यतः वैराग की ओर है। यम और नियम का आचरण योगाभ्यास के लिए आवश्यक है।

आसन का अर्थ है शरीर को ऐसी स्थिति में रखना जिससे वह निश्चल होकर देर तक सुखपूर्वक रह सके। ध्यान के लिए वही आसन उत्तम है जिससे शरीर का सुख और चित्त की स्थिरता बनी रहे–**'स्थिरसुखमासनम्'** ।[18] पद्मासन, वीरासन, भद्रासन, स्वस्तिकासन, दण्डासन, सोपाश्रय, पर्य्यङ्कासन, क्रौच्चनिषदन, हस्तिनिषदन, उष्ट्रनिषदन और समसंस्थान आदि प्रमुख आसन हैं।

प्राणायाम प्राण–वायु का संयम है। पतञ्जलि ने इसे ऐच्छिक साधन ही माना है, किन्तु परवर्ती भाष्यकारों ने इस पर पर्याप्त बल दिया है। इस क्रिया के तीन अंग हैं–पूरक, कुम्भक और रेचक। इसके अन्तर्गत क्रमशः नियमपूर्वक श्वास खींचना, कुछ देर स्थिर रखना और श्वास छोड़ना आदि क्रियाएँ आती हैं। श्वास–प्रश्वास सम्बन्धी व्यायाम को आधुनिक योग में भी स्वास्थ्य के लिये उपयोगी माना जाता है। प्राणायाम से बढ़कर कोई तप नहीं है उससे मनों की शुद्धि और ज्ञान की स्फूर्ति होती है। प्राणायाम से योगी के विवेकज्ञान को आच्छादित करने वाला कर्म क्षीण होता है और धारणा में समर्थ होता है।

इन्द्रियों को बाह्य विषयों से हटाना 'प्रत्याहार' कहलाता है। यह इन्द्रियों का संयम है। इन्द्रियाँ स्वभाव से ही बहिर्मुखी होती है। उनकी बहिर्मुखी वृत्ति को अन्तर्मुखी बनाना प्रत्याहार है। इन्द्रियों को चित्ताकारानुकारी बनाना ही उनका अन्तर्मुखी कारण है। इससे धारणा निष्पन्न होती है।

किसी स्थान–विशेष पर चित्त स्थिर करने को धारणा कहते हैं–**'देशबन्धश्चित्तस्य धारणा'** ।[19] यह मन की स्थिरता है। योग दर्शन में धारणा के लिये अनेक स्थान बताये गये हैं जैसे–नाभिचक्र, नासिका, जिह्वा का अग्रभाग, हृदय–पुण्डरीक, अक्षिपुतलिका आदि। विज्ञानभिक्षु का कथन है कि ध्येय पदार्थ या ध्येय विषय के रूप गुणादि की कल्पना न करके केवल वृत्ति का उस प्रदेश तक प्रसार करके वहीं स्थिर करना ही धारणा है–**'वृत्तिमात्रेण न तु ध्येयकल्पनयेत्यर्थः तेन ध्यानादिव्यावृत्तिः'** ।

उस धारणा वाले विषय में ज्ञान की एकतानता ही 'ध्यान' है– **'तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्'** ।[20] ध्यान का लक्षण एकाग्रता है। इसका अर्थ है, ध्येय वस्तु का निरन्तर मनन, ध्येय विषय को लेकर विचार का अनवच्छिन्न प्रवाह। ध्यान में एक समय में एक ही ज्ञान का प्रवाह होता है और वह अन्य प्रकार के ज्ञान से मिश्रित नहीं होता। इसमें केवल ध्येय–विषय प्रकाशित होता है। जब ध्यान आभ्यन्तर या बाह्य विषयों की ओर प्रेरित होता है तब असाधारण शक्तियाँ प्राप्त होती हैं।

'समाधि' का अर्थ है ध्येय वस्तु में चित्त की विक्षेपरहित एकाग्रता– **'तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः'** ।[21] समाधि में ध्यान ध्येय वस्तु का आकार ग्रहण कर लेता है। ध्यान और ध्येय की एकता होने पर ध्याता भी ध्येयाकार हो जाता है। समाधि में ध्याता, ध्यान और ध्येय की त्रिपुटी में ध्येय ही शेष रह जाता है तथा ध्याता एवं ध्यान ध्येयाकार हो जाते हैं। सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात ये समाधि के दो भेद स्वीकार किये गये हैं। सम्प्रज्ञात समाधि में केवल ध्येय विषय का ज्ञान होता है और असम्प्रज्ञात समाधि में चित्त सर्वथा निरूद्ध हो जाता है। सवितर्क, सविचार, सानन्द और साष्मित ये सम्प्रज्ञा समाधि के चार प्रकार हैं जबकि 'भवप्रत्यय' एवं उपायप्रत्यय असम्प्रज्ञा समाधि के दो भेद हैं। सम्प्रज्ञा समाधि को सबीज और असम्प्रज्ञा समाधि को निर्बीज भी कहते हैं।

योगदर्शन के अनुसार योगाभ्यास द्वारा साधक की रजस् एवं तमस् जन्य मलिनता क्षीण हो जाती है और सत्त्वगुण का उद्रेक होने से चित्त शुद्ध एवं निर्मल हो जाता है। साधक सत्त्वगुण की उच्चतम अवस्था को प्राप्त करने पर अद्भुत शक्तियों का अनुभव करता है। इन शक्तियों को विभूति या ऐश्वर्य कहते हैं। इन विभूतियों में अणिमा, लघिमा, महिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, वशिता तथा ईशिता इन अष्टसिद्धियों का महत्वपूर्ण स्थान है। इन अलौकिक विभूतियों को कैवल्य प्राप्ति में बाधक माना जाता है। योगदर्शन के विभूतिपाद में वर्णित है कि इन विभूतियों की उपेक्षा करने से ही कैवल्य प्राप्त हो सकता है।

सन्दर्भ–सूची

1. श्रीमद्भगवद्गीता 2/50
2. वही 2/48
3. ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्। वही 3/3
4. आनन्दात्मक ब्रह्मावाप्तिश्च मोक्षः शोक निवृत्तिश्च।
   वेदान्त परिभाषा व्याख्याकार श्री गजाननशास्त्री मूसलगांवकर, पृष्ठ 353
5. स्वामी विवेकानन्द, विवेकानन्द साहित्य, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ 4
6. सा तस्मिन परमप्रेमरूपा, नारद–सूत्र 1/2
7. न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
   कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।। श्रीमद्भगवद्गीता 3/5
8. शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुम।
   न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।। सौन्दर्यलहरी श्लोक 1
9. जन्मोषधिमन्त्रतपः समाधिजाः सिद्धयः। योगसूत्र 4/1
10. स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः। योगसूत्र 2/27
11. तस्य वाचकः प्रणवः। योगसूत्र 1/27
12. तज्जपस्तदर्थभावनम्। योगसूत्र 1/28
13. योगसूत्र 1/2
14. वही 1/6
15. योगभाष्य 1/48
16. योगसूत्र 2/30
17. वही 2/32
18. वही 2/46
19. वही 3/1
20. वही 3/2
21. वही 3/3